विस्थापन की बलि के लिए तैयार किए
सरकारी काम बंद, लोगों की निस्तारी, प

बाबा मायाराम

हम सिर्फ बाजार से नमक और कपड़ा खरीदते हैं, बाकी जरूरत की चीजें अपने खेत में ही पैदा करते है। यहीं हम अच्छे हैं। जंगल से बाहर हमें ऐसी हरी-भरी खेती, पर्याप्त पानी, जंगल, पहाड़ और आजादी कहां मिलेगी ?- यह कहना है मध्यप्रदेश के सोहागपुर तहसील के काकड़ी गांव के जनपद सदस्य जयसिंह का।

विशेष रिपोर्ट

ऐसा स्वावलंबी गांव एक ही नहीं है, और भी है।

काकड़ी सतपुड़ा टाईगर रिजर्व का एक गांव है जिस पर इस क्षेत्र के अन्य गांवों की तरह विस्थापन की तलवार लटक रही है। सतपुड़ा की गोद में बसे इस गांव में सब कोरकू आदिवासी हैं, बस एकाध परिवार गोली समुदाय का है। बोरी अभयारण्य के गांवों में गोंड-कोरकू आदिवासी के अलावा गोली समुदाय के लोग भी रहते हैं। गोली समुदाय पशुपालन का काम करते हैं। वे अपने घरों में 50-50 ढोर रखते हैं। कोरकू आदिवासियों के झोपड़े-घर दूर-दूर खेत में ही बने हुए हैं। घर के आगे-पीछे बाड़ा होता है जिसमें वे सब्जियां व मक्का वगैरह लगाते हैं।

होशंगाबाद जिले में वन्य प्राणियों के लिए तीन सुरक्षित क्षेत्र बनाए गए हैं- सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान, बोरी अभयारण्य और पचमढ़ी अभ्यारण्य। तीनों को मिलाकर सतपुड़ा टाईगर रिजर्व बनाया गया है। इसमें सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान के 8 गांव, बोरी अभ्यारण्य के 17 गांव, पचमढ़ी अभ्यारण्य के 50 गांव शामिल हैं। कुल मिलाकर, आदिवासियों के लगभग 75 गांव हैं और इतने ही गांव

बाहर सीमा से लगे हुए हैं। इनमें से अंदर के लगभग 50 गांवों को हटाने की योजना है। ये सभी गांव पूरी तरह जंगल, भूमि ओर पानी दतवा जलाशय पर आश्रित है।

काकड़ी बोरी अभ्यारण्य के अंदर है। इसके आगे धांई गांव था जो हटाया जा चुका है। एक और गांव बोरी को हटाया जा

...जाते गांवों की कहानी
...पशुओं के चरने पर रोक

रहा है। इसी गांव के नाम पर इस अभ्यारण्य का नाम बोरी अभ्यारण्य पड़ा था। जब इन पंक्तियों का लेखक इसी साल जनवरी में बोरी गांव गया था तो वहां बहुत ही निराशा का वातावरण देखा। एक डेढ़ माह से वहां का स्कूल बंद था। लगभग दो साल से लोगों ने अपने खेतों में फसलें नहीं बोई थी। घरों की मरम्मत नहीं की थी। जयसिंह का कहना है कि वे अपने खेत में जरूरत की सभी चीजें पैदा कर लेते है, हमें ज्यादा चीजें बाजार से खरीदने की जरूरत नहीं। कोदो, कुटकी, धान, मक्का, उड़द आदि अन्न पकाते हैं। इसके अलावा, यहां पर्याप्त पानी है। काकड़ी नदी पर स्टापडेम बना है जिससे खेतों में सिंचाई के लिए पानी मिलता है। यहां सभी तरह की सब्जियां उगाते हैं। महुआ भून के लड्डू बनाते हैं जिसे गुड़ की तरह भी इस्तेमाल कर लेते हैं। तिल्ली के लड्डू भी बनाते हैं। तेल भी सरसों का कर लेते हैं जिसे दूसरे तेल से बदल लेते है। इसके अलावा, जंगल से कंद-मूल ननमाटी, जंगली रताड़ू, बेचांदी, कडुमाटी, भमोड़ी (मशरूम) आदि भी खाने में इस्तेमाल किए जाते हैं।

(बाकी पेज 8 पर)

पहले पेज से आगे

विस्थापन की बलि के लिए तैयार किए जाते गांवों की कहानी

जिन कंदों में कड़ुवापन होता है उन्हें विशेष पद्धति से दूर कर दिया जाता हैं। बेल को उबालकर खाते हैं। अगर एक दो दिन भोजन न मिले तो जंगल से ही गुजारा चल जाता है। यह सब उनके भूख के दिनों के साथी हैं। इस इलाके में खाद्य सुरक्षा की गजरा या बिररा खेती की पद्धति प्रचलित है जिसमें दो-तीन फसलों को मिलाकर एक साथ बोया जाता है। जैसे तुअर के साथ कोदो बो देते है। यह पद्धति सूखे और जंगल क्षेत्र में ही पाई जाती है। यह उस स्थिति में खास मददगार साबित होती है जब एक फसल मार खा जाती है तो दूसरी से उसकी पूर्ति हो जाती है। जबकि एक ही फसल बोने और उसमें रोग लगने से किसान के हाथ कुछ नहीं लगता। इसके अलावा, खेतों की मिट्टी की उर्वरा भी कम नहीं होती क्योंकि फलियोंवाली फसलों से नाइट्रोजन की कमी पूरी हो जाती है। कृषि वैज्ञानिकों का मानना है कि इससे फसल खराब होने या रोग लगने का खतरा भी कम हो जाता है।

अक्सर विस्थापन के पहले सर्वे और रपटों में मौद्रिक चीजों का आंकलन किया जाता है लेकिन अमौद्रिक चीजों का नहीं। जबकि विशेषकर जंगल व अभ्यारण्य क्षेत्र में रहनेवाले आदिवासियों के जीवन का प्रमुख आधार जंगल है जिसमें काफी चीजें अमौद्रिक हैं, जो जंगल के कारण ही उन्हें निशुल्क व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं और ये चीजें पुनर्वास होने के बाद जंगल के बाहर उपलब्ध नहीं होती। वे जंगल में अपने पशु चराते हैं, जंगल से लकड़ी-बांस व अपनी जरूरतें लाते हैं। महुआ, गुल्ली, शहद, तेंदू, तेंदूपत्ता, अचार, मैनर, आंवला, पत्तल-दोने और भाभर घास लाते है। बच्चों के लिए पोषण की कई चीजें जंगल में निशुल्क मिलती है। जैसे बेर, जामुन, अमरूद मकोई, सीताफल, आम, शहद और कई तरह के फल-फूल सहज ही उपलब्ध होते है जिन्हें वे इधर-उधर ढूंढकर खाते रहते हैं। जिनका जंगल से बाहर आने पर ये चीजें नहीं मिलेंगी। इसका ताजा उदाहरण सतपुड़ा टाईगर रिजर्व से हाल ही में विस्थापित नई धांई के लोगों का है। नई धांई में पानी और चारे की कमी के कारण लोगों के बड़ी संख्या में मवेशियों की मौतें हो गईं। महिलाओं को निस्तार के लिए भी पानी की कमी है।

इस गांव में वन विभाग ने जंगली जानवर और मनुष्य के टकराव को रोकने के लिए गांव के खेतों की फेंसिंग की है। ग्रामीणों के अनुसार यह फेंसिंग वर्ष 1999 में लगाई गई है। जिससे जंगली जानवर खेतों की फसल को नुकसान नहीं पहुंचा पाते और जंगली जानवरों से सुरक्षा होती है। दूसरी खेतों की बागड़ करने के लिए जंगल से कांटा-गेड़ी भी नहीं काटनी पड़ती। जंगल भी नहीं कटता। हालांकि अभी तक यह काकड़ी, चूरना और साकोट तक सीमित है।

गांव वाले इसके कई फायदे गिना रहे हैं। लेकिन इस मॉडल को अब तक दूसरे गांवों में नहीं किया गया है। यहां जंगली जानवर और मनुष्य के सहअस्तित्व की एक और मिसाल देखी जा सकती है जब यहां के जंगलों में जंगली जानवर और घरेलू पशु गाय-बैल साथ-साथ चरते हैं। हिरन, जंगली बोदा (भैंसा), चीतल, सांभर और गाय-बैल साथ-साथ चरते देखे जा सकते हैं। ऐसा दृश्य सुखद आश्चर्य का होता है। हालांकि वन विभाग इससे जंगली जानवरों में संक्रामक बीमारी की आशंका जताता है। यहां महिलाओं द्वारा चलाया जा रहा स्वयं सहायता समूह का काम भी महत्वपूर्ण है। इसमें वे वनोपज संग्रह एकत्र कर और बेचकर हर सप्ताह 10-10 रू. जमा करते हैं। जिस किसी को जरूरत होती है तो उसकी मदद करते हैं। उनका स्वयं सहायता समूह 3 साल से चल रहा है।

जयसिंह का कहना है कि किसी गांव को हटाने के लिए लंबे समय से इसकी पृष्ठभूमि तैयार की जाती है। गांववालों के रोजमर्रा के तमाम काम नहीं किए जाते। पहले यहां वन विभाग की तरफ से काम मिलता था, वह बंद हो गया। उनके गांव में विकास कार्य नहीं होते। उन्होंने बताया कि गांव में लगभग 10 साल से सभी विकास के निर्माण कार्यों पर रोक है। चाहे सड़क निर्माण हो या कोई और, सब पर रोक है। जंगल में भी निस्तार पर रोक लगाई जा रही है। इस सबके बिना हमारा काम कैसे चलेगा?

इस संबध में क्षेत्र में कार्यरत किसान आदिवासी संगठन के सचिव फागराम का कहना है कि निर्माण कार्य पर रोक के साथ-साथ सतपुड़ा टाईगर रिजर्व के इन सारे गांवों में पिछले कई वर्षों से गांववासियों पर कई तरह के प्रतिबंध लगाए जा रहे हैं। यहां के लोग खेती, मवेशी चराने, गुल्ली, अचार, अन्य वनोपज एकत्र करने और बेचने, पत्तल-दोना बेचने, भाभर घास बेचने, शहद बेचने आदि का काम करते है। लेकिन इन सब पर रोक लगाई जा रही हैं। उन्हें एक बाड़े में कैद किया जा रहा है। जिससे उनके पास विस्थापन के अलावा कोई चारा न बचे।

कुल मिलाकर, यहां सादगीपूर्ण और तामझाम रहित सरल और सहज जीवन देखा जा सकता है। बहुत ही कम संसाधनों में सहज और आजादीपसंद जीवन, जिसे अपनाने की बात करना भर मजाक बन जाती है। ऐसे स्वावलंबी और गांवों के ऐसे महत्वपूर्ण कामों को नजरअंदाज किया जा रहा है। कहा जा रहा है कि वन्य प्राणियों को स्वछंद विचरण और रहने में मनुष्य की मौजूदगी बाधक है। लिहाजा पूरे क्षेत्र को मनुष्य रहित बनाया जाए। यह न तो वन्यप्राणियों के हित में है न वनों के। क्योंकि जहां आदिवासी है वहीं जंगल है और जहां आदिवासी नहीं हैं, वहां जंगल साफ हो गया है। इसलिए हमें वन्यप्राणी, वन और आदिवासी तीनों को बचाने पर जोर देना चाहिए।

(सी. एस. ई. मीडिया फैलोशिप के तहत रिपोर्ट)